SHIKSHA SAMVAD
International Open Access Peer-Reviewed & Refereed
Journal of Multidisciplinary Research
ISSN: 2584-0983 (Online)
Volume-02, Issue-02, December- 2024
www.shikshasamvad.com

"लोक–कलाओं का बदलता स्वरूप"

डॉ0 नरेन्द्र कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर,
जनता पी0जी0 कॉलेज, रामपुर, (उ0प्र0)

सारांश

लोक कला का सम्बन्ध मानव जीवन के प्रारम्भ से ही जुड़ा हुआ है। इसका सम्बन्ध हमारे सस्कारों, रीतिरिवाजों, प्राचीन मान्यताओं, मानवताओ, प्रवृत्तियों आदि से प्राचीन काल से जुड़ा हुआ है। प्राचीन कला की की कला लेकर आज तक की वर्तमान कला तक इसके स्वरूप में काफी बदलाव आ चुका है। मुनष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक लोक–कला के आयाम जुड़े हुए हैं।

लोक कलाओं के बदलते स्वरूप के कारण ही आधुनिकीकरण तथा पाश्चात्य प्रभाव हावी होता जा रहा है तथा इन कलाओं का दायरा सिमटता जा रहा है। हमारे समाज में लोक–कला, लोक चित्र कला, लोक–संगीत, लोक गीत तथा लोक नृत्य साथ–साथ चलते थे। भारतीय लोक जनमानस में प्रचलित कला जो लोककला के नाम से प्रसिद्ध हुई, जिसमें अल्पना, चौकपूरना, साँझी बनाना, अध्ययन, रांगेली बनाना, लील गुदवाना, चीता'जोटी, साथिया, माण्डना, बड़े बाबू, बूडेबाबू करवा चौथ, अहोई–अष्टमी, नाग–पँचे, भाई–दूज, हल छट, गण गौर आदि को महिलाऐंब ड़े कलात्मक ढंग से बनाती है, इन चित्रों की रचना धार्मिक महत्व लिए होती है। हालांकि इस कला को बढ़ाने के लिए महिलाओं के साथ–साथ लोककलाकारों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है, जिनमें देवयानि कृष्ण, जयाअप्पा स्वामी, दमयन्ती चावला, नसरीन मोहम्मदी, आर्पित सिंह, अंजलि इला मेनन, माधवी पारेख, अर्पणा कौर, सविया आदि प्रमुख है। आज बदलते परिवेश में हम देखते हैं कि नगर सौन्दर्यीकरण के अन्तर्गत सड़क किनारे दीवारों, पुलों की दीवारों रेलवे स्टेशनों, ऐतिहासिक इमारतों की दीवारों आदि पर भारतीय लोककला को प्रदर्शिता किया जा रहा है। इसके साथ ही सतावटी वस्तु, बर्तन तथा कुछ वस्त्र उद्योग लोककला को निखारने का प्रयत्न कर रहे हैं।

लोक कला को लोग साधारणतया 'ग्रामीण संस्कृति' का पर्याप मान लेते हैं जबकि यह उन सभी लोगों की संस्कृति है जो किसी समुदाय का हिस्सा है, जिनकी कुछ परम्पराऐं तथा मान्यताऐं हैं। लोक कलाओं में समाज के साथ–साथ बदलाव आते हैं, जिस तरह लोक गीतों में कभी ठहराव नहीं आता,। वह जिसके कंठ से गाया जाता है उसी का हो जाता है। ठीक इसी तरह लोककला में भी कुछ न कुछ जुड़ता रहता है। इस जोड़–घटाव के बाद भी उसकी मूल सुगन्ध ज्यों की त्यों बनी हुई है तथा बाह्य संस्कृतियों का असर कम ही देखने को मिलता है तथा कहीं न कहीं लोकला अपने मूल स्वरूप को अपने आप में समेटे हुए समय के अनुसार अपने वर्तमान स्वरूप में ढलती रहती है, किन्तु अपने मूल रूप को नहीं छोडती तथा उसमें परिवर्तन करती रहती है, यही भारतीय लोककला की सबसे बड़ी विशेषता है। लोक संस्कृति के अंतर्गत लोक–जीवन, लोक–संस्कार, लोक–विश्वास, मिथक, लोक–साहित्य, लोक चेतना और लोक संगीत आदि सभी कुछ समाहित हैं। हमारे देश में अनेकों लोक संस्कृतियाँ है और उनमें इतनी विविधता है कि सभी को एक साथ समेटना बेहद मुशकिल है इसीलिए अलग–अलग क्षेत्रों की लोककलाओं और संस्कृतियों की अपनी अलग–अलग पहचान है विविधता के होते हुए भी इन सभी लोक कलाओं की अपनी अलग पहचान है। विविधता के होते हुए भी इन सभी लोक कलाओं में एकरूपता भी है। इस एक रूपता का मूल हमारे देश की लोक चेतना में है।

लोक कलाओं के बदलते स्वरूप में पश्चिमी सभ्यता और आधुनिकता का प्रभाव लोककलाओं पर भी पड़ रहा है, जिससे हर क्षेत्र में तेजी से बदलाव आ रहे हैं, परन्तु ये बदलाव एक दिन में नहीं आते, धीरे–धीरे ही समाज बदलता है। डॉ0 कृष्ण देव उपाध्याय ने 'भोजपुरी लोक–संस्कृति' के बदलते स्वरूप' नामक पुस्तक 1989 में प्रकाशित हुई, अपनी पुस्तक में एक अध्याय लिखा था जिसमें भोजपुरी समाज के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और दार्शनिक जीवन में आये परिवर्तनों की व्यापक चर्चा की है। सामाजिक परिवर्तनों के अंतर्गत वर्ण व्यवस्था में आये परिवर्तन की चर्चा करते हुए कृष्ण देव उपाध्याय ने लिखा है कि अब मनु द्वारा स्थापित चार वर्गों में सभी निम्न वर्णों में अपने आप को उच्च वर्ग का बताने की होड़ लगने लगी है। उन्होंने उदाहरण देते हुए लिखा है कि नाइयों का कहना है कि हम लोग पहले ब्राहमण थे, परन्तु क्षौर कार्य को पेशे के रूप में स्वीकार करने के कारण नाई को हो गये ऐसे लोग अपनी जाति नाई ब्राहमण बनवाने लगे। जातियों में प्राचीन व्यवस्था के तहत जो श्रम विभाजन किया गया यह व्यवस्था अब बहुत हद तक टूट चुकी है। पश्चिमी संस्कृ ति धीरे धीरे भारतीय लोककलायों पर प्रधान डाल रही है, इसी चिंता को व्यक्त करते हुए गोविद चातक अपनी पुस्तक 'संस्कृति समस्या और संभावना' में लिखा है कि भोगवादी प्रवृति का शिकार होने वालों में नारी और युवा वर्ग तो है ही, लोक जीवन पर भी उसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है।

लोक गीत, लोक नृत्य और लोक कला, लोक जीवन की सबसे बडी धरोहर होती है, जो गीत कभी हमको हमारी जमीन, हमारी परंपरा, तीज–त्यौहार, मेले–ठेले, ऋतु पर्व, भगवान की लालाओं, आल्हा और कजरी से दुख और दर्द से, माँगल्य और उल्लास से जोड़ते थे, वे आज उपभोक्तावादी संस्कृति की भेंट चढ़ रहे हैं।

भारत वासियों का जीवन–दर्शन बोक कल्याण लोक वैभव और लोक चेतना को प्रस्तुत करता है। लोक जीवन विस्कृति और आत्मसुख का एक मात्र साधन है। अतः इसकी परिलक्षणा का स्वरूप लोक कला है। इस लोक कला का उचित असाधारण एवं असामान्य मान्यतायों से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। अतः यह कला का वह सामाजिक स्वरूप होता है कि जिसमें परम्परागत संस्कार और धार्मिक आदर्श सरलता से व्यक्त होते हैं इस मत से डॉ० कॉरल सौत भी सहमत हैं। अतः लोककला का मानव जीवन के इतिहास से धमिष्ठ सम्बन्य रहा है। इसका विकास एवं पतन मानव के साथ ही हुआ है। लोककला की परम्परा प्राचीन काल से भारत का गौरव रही है तब से लेकर लोक कलाओं का स्वरूप, समाज की परम्परा सभ्यता एवं भावना को इतिहास के रूप में पाते हैं। कला मानब जीवन की सौन्दर्यानुभूति के आदर्शों को प्रकट करती है। जैसे मोहन जोदडो एवं हत्वा से प्राप्त वस्तुओं से प्राचीनता के महत्व का पता चलता है वैदिक काल से आज के युग की कला पर उस युग की छाप हमें आज भी देखने को मिलती है। लोक कला के विकास को साहित्य के विकास के साथ देखे तो अधिक उचित होगा जिस प्रकार साहित्य के दो पक्ष है– लोकभाषा एवं संस्कृत भाषा, उसी प्रकार चित्रकला के भी दो पक्ष हमें देखने को मिलते हैं– लोककला एवं चित्रकला। लोककला एक परम्परा है यह प्रत्येक परिवार की सम्पत्ति है जिसको धर्म, आचरण, संस्कार और अंधविश्वासों की अमिट और निश्चित परम्परा ने जकड़ रखा है जिसके कारण उनके स्वरूप में परिवर्तन करने की स्थिति सरल नहीं है किन्तु माध्यम और विधि पर आधुनिकता का प्रभाव देखा जा सकता है जिसने अपने स्थाई प्रारूप को एक लम्बी अवधि से आज तक बनाये रखने में सफलता प्राप्त की है जिसके कारण उसका स्वरूप सार्वभौमिक माना जाता है।

आदिय अवस्था में मनुष्य अपने सौदर्यपरक क्रिया कलाप को जीवन के अन्य कार्यों से अलग नहीं रखता था कला उसकी जीवन प्रक्रिया का अभिन्न अंग थी अनेक पहाडियों में आखेट पशुपालन तथा अन्य जीवाकृतियाँ, पशुपक्षी, मानवाकृतियाँ, युद्ध, धनुर्धारी, अश्वारोही, हस्तारोही, नाच–गाना, देवाराधना के चित्र मिलते हैं ये चित्र तत्कालीन संस्कृति और कला को प्रकट करते हैं।

सभ्यता के विकास के साथ हड़प्पा संस्कृति आते–आते दैनिक प्रयोग की वस्तुओं, पात्रों, मृद भाण्डों व मुद्राओं पर भी चित्रों का अंकतन मिलने लगा अधिकांश बर्तनों पर ज्यामितीप चित्र चित्रण मिलता है एवं पशु–पक्षी, फूल पत्तियों तथा मुद्धाओं पर विभिन्न पशु–पक्षी के चित्र मिलते हैं। धर्म, उत्सव,

पूजा–पाठ से सम्बन्धित चित्र भी मिलते है। शैलेन्द्र नाथ डे के शब्दों में ''लोककला जनसामान्य की सामूहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है।'' प्रो० विजय कुलश्रेण ने लोककला में सभी कलाओं को समाहित मानते हैं जिसमें परम्परणतुता एवं लोक–मानसिकता के तत्व निहित मेते हैं जो उसे कवा से लोक कला बनाते हैं।

लोक कलाओं को विदेशी आक्रान्ताओं एवं अंग्रेजी प्रशासन व्यवस्था और सांस्कृतिक दबावों के कारण हमारी लोककला तो बहुत आघात पहुंचा। भारतीय धार्मिक परम्पराओं एवं शक्तियों को समूल नष्ट करने का प्रयास किया हमारी लोककलाओं तथा संस्कृति के उत्तम नमूनों को नष्ट किया। अंग्रेजी सरकार ने भारतीय लोक समाज को दूषित किया फिर भी भारतीय संस्कृति एवं लोक परम्पराएँ एवं लोक कला जीवित रही। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भी हमारी लोक कलाएँ एवं परम्पराएँ बलवती होकर इस संग्राम को बलवती बनाती रही।

इस प्रकार हम कह सकते है कि बोककला धार्मिक, सामाजिक आध्यात्मिक, आर्थिक सभी पहलुओं की समृद्धि केसिए चित्रित की जाती है। लोक कला पर स्थानीय कारकों और तत्वों का प्रभाव होता है इसीलिए अलग–2 क्षेत्रों की लोककला में भिन्नता पाई जाती है। समय के साथ–साथ भारतीय लोक कला का स्वरूप भी बदलता गया लेकिन वह अपने मूल से नहीं भटकी तथा उसका स्वरूप आधुनिकता के अनुसार बदलता चला गया। हम देखते हैं कि भारतीय लोक कला एवं संस्कृति का आज का स्वरूप सम्पूर्ण भारत ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण में फैला हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1– जोशी, शेखर चन्द– चित्रकला एवं लोककला–2009 पृष्ठ–67.

2– चौहान, रीता. नाटय कला और शिक्षा – 2018/19 पृष्ठ 92

3– डॉ० वर्मा, अवनीश बहादुर – कला एवं प्रतीक –2011 पृष्ठ–60

4– श्मूक 'आवाज' – हिन्दी जर्नल, अंक–5, प्र०6–798.

5– डॉ. शर्मा, एस. के. – भारतीय कला का उद्देश्यपूर्व अध्ययन– 2004

SHIKSHA SAMVAD
An Online Quarterly Multi-Disciplinary
Peer-Reviewed or Refereed Research Journal
ISSN: 2584-0983 (Online) Impact-Factor, RPRI-3.87
Volume-02, Issue-02, Dec.- 2024
www.shikshasamvad.com
Certificate Number-Dec-2024/19

Certificate Of Publication

This Certificate is proudly presented to

डॉ0 नरेन्द्र कुमार

For publication of research paper title

"लोक–कलाओं का बदलता स्वरूप"

Published in 'Shiksha Samvad' Peer-Reviewed and Refereed Research Journal and E-ISSN: 2584-0983(Online), Volume-02, Issue-02, Month December, Year- 2024, Impact-Factor, RPRI-3.87.

Dr. Neeraj Yadav
Editor-In-Chief

Dr. Lohans Kumar Kalyani
Executive-chief- Editor

Note: This E-Certificate is valid with published paper and the paper must be available online at www.shikshasamvad.com